भारत में परमाणु शक्ति का भविष्य
The Future of Nuclear Power in India

एम.वी.रमण

M. V. Ramana
1.4.10

सितंबर 2009 में नई दिल्ली में परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण प्रयोग पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि भारत 2050 तक 470 गीगावाट (GW) की परमाणु क्षमता प्राप्त कर लेगा. यदि इसे सही परिदृश्य में रखा जाए तो हम पाएँगे कि परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की शुरूआत के साठ साल के बाद भी और प्रथम परमाणु रिएक्टर द्वारा देश के ग्रिड को बिजली देने की शुरूआत करने के चालीस साल के बाद भी देश में वर्तमान ऊर्जा क्षमता मात्र 4.12 GW है, जो कुल बिजली उत्पादन क्षमता का लगभग तीन प्रतिशत है. इसप्रकार 2050 में प्रक्षेपित क्षमता में यह वृद्धि सौ पर मात्र एक गुणनफल की ही रहेगी. क्या यह व्यावहारिक है? या सामान्य तौर पर क्या परमाणु ऊर्जा देश में बिजली के उत्पादन का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकेगी?

इन प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक ही रहेंगे. इसके पीछे तीन कारक तत्व हैं: इतिहास, प्रौद्योगिकी और अर्थप्रणाली. विभिन्न स्तरों पर राजनीति भी कई तरह से भविष्य को प्रभावित कर सकती है.

बहुत खर्चीले प्रक्षेपण करने में परमाणु ऊर्जा का लंबा इतिहास रहा है. लंबे-चौड़े बजट के बावजूद अब तक उनका कोई भी प्रक्षेपण पूरा नहीं हो पाया है. यह प्रवृत्ति 1954 में तब शुरू हुई थी जब परमाणु कार्यक्रम के संस्थापक होमी भाभा ने घोषणा की थी कि देश में 8,000 मेगावाट (MW) तक परमाणु ऊर्जा का उत्पादन होने लगेगा. सन् 1960 में यह प्रक्षेपण किया गया था कि वर्ष 2000 तक यह उत्पादन बढ़कर 43,500 MW तक हो जाएगा. किंतु वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग थी. वास्तव में सन् 1980 में स्थापित क्षमता 600 MW थी और सन् 2000 में 2,720 MW. वर्ष 1984 में परमाणु ऊर्जा का एक और प्रोफ़ाइल घोषित किया गया, जिसमें यह परिकल्पना की गई कि वर्ष 2000 में यह उत्पादन बढ़कर 10,000 MW हो जाएगा. भारत के नियंत्रक और महालेखाकार ने 1999 की अपनी रिपोर्ट में लिखा था: “1995-96 में 940 MW ऊर्जा के अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन के लक्ष्य को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए 2001 में 7880 MW का लक्ष्य निर्धारित किया गया और 52.91 बिलियन रुपए खर्च करने के बावजूद मार्च, 1998 के प्रोफ़ाइल में ऊर्जा का अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन शून्य दर्शाया गया.” यह प्रवृत्ति जारी रही. 2000 के दशक के आरंभ में परमाणु ऊर्जा विभाग ने यह प्रक्षेपण किया कि 2052 तक परमाणु ऊर्जा का उत्पादन 275 GW होने लगेगा. यह उत्पादन भारत के कुल बिजली उत्पादन की प्रक्षेपित क्षमता का 20 प्रतिशत होगा. भारत-अमरीका के परमाणु समझौते के कारण यह प्रक्षेपित क्षमता बढ़कर 470 GW हो जाएगी. लक्ष्य

प्राप्ति के परमाणु ऊर्जा विभाग के निराशाजनक इतिहास को देखते हुए उनका यह दावा भी संदिग्ध ही लगता है.

इन लक्ष्यों की प्राप्ति में संदेह की आशंका का कम से कम एक ठोस तकनीकी कारण भी है. परमाणु ऊर्जा विभाग की योजना के अंतर्गत हज़ारों तेज़ ब्रीडर रिएक्टर बनाने और तीन स्तर के परमाणु कार्यक्रमों को प्रचारित करने का काम भी तय किया गया है. इन्हें तेज़ ब्रीडर रिएक्टर इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे ऊर्जा से भरे (तेज़) न्यूट्रोन पर आधारित हैं और वे जितना अधिक विखंडन सामग्री की खपत करते हैं उससे कहीं अधिक उसका उत्पादन (ब्रीड) करते हैं. परमाणु ऊर्जा के आरंभिक दशकों में अनेक देश ब्रीडर कार्यक्रम ही चलाते थे, लेकिन असुरक्षित और गैर-किफ़ायती होने के कारण अब अधिकांश देशों ने इसे लगभग तिलांजलि ही दे दी है. अमरीका के जलसैनिक परमाणु पनडुब्बी कार्यक्रम के संस्थापक एडमिरल हैमन रिकोवर के शब्दों में "ब्रीडर रिएक्टरों के साथ किए गए प्रयोगों से यह पता चलता है कि उनका निर्माण बहुत खर्चीला होता है, उनका संचालन बहुत जटिल होता है और उनमें अगर थोड़ी-सी भी खराबी आ जाए तो उन्हें ठीक करने में बहुत समय लग जाता है. उनकी मरम्मत मुश्किल से होती है और उसमें समय भी ज़्यादा लगता है." अविश्वसनीय प्रौद्योगिकी पर आधारित होने के कारण परमाणु ऊर्जा भारत में कभी-भी बिजली उत्पादन का प्रमुख स्रोत नहीं बन सकती.

इसके अलावा परमाणु ऊर्जा विभाग के प्रक्षेपणों में भविष्य में प्लुटोनियम की उपलब्धता सुनिश्चित करने की भी कोई व्यवस्था नहीं की गई है. परमाणु ऊर्जा विभाग ने ब्रीडरों के तेज़ी से विस्तार का प्रस्ताव तो किया है, लेकिन उसके पास शुरूआती दौर में भी 2020 से आगे के लिए पर्याप्त प्लुटोनियम का भंडार नहीं होगा. साथ ही चालू और निर्माणाधीन हैवी वाटर रिएक्टरों द्वारा उत्पन्न और खर्च किए गए ईंधन को संभालने के लिए इस समय उसके पास पर्याप्त रीप्रोसेसिंग क्षमता भी नहीं है. नए रीप्रोसेसिंग संयंत्रों के निर्माण में कम से कम दस से पंद्रह साल का समय लगता है.

परमाणु ऊर्जा विभाग ने यह भी ध्यान नहीं रखा कि ब्रीडर रिएक्टर के लिए प्लुटोनियम की कब और कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी और कब उसी रिएक्टर के लिए दुबारा ईंधन भरने के लिए कितने अतिरिक्त प्लुटोनियम की आवश्यकता होगी. इस प्रकार नए ब्रीडर रिएक्टर के लिए आरंभिक ईंधन की आवश्यकता का आकलन कैसे होगा. इसके बजाय परमाणु ऊर्जा विभाग ने एक ऐसी दोषपूर्ण कार्यविधि अपनाई है जो केवल उन देशों में अपनाई जाती है जिनके पास परमाणु रिएक्टर की पर्याप्त क्षमता हो और प्लुटोनियम का अपार भंडार पहले से ही मौजूद हो. प्रक्षेपित वृद्धि की ये दरें केवल अलग-अलग अनुमानों की समस्या नहीं हैं, बल्कि बिल्कुल असंभव कल्पनाएँ हैं.. इसके अलावा परमाणु ऊर्जा विभाग ने रेडियोऐक्टिव वाले खर्च किए गए ईंधन से निपटने और प्लुटोनियम की पुनःप्राप्ति के लिए कुछ और काल्पनिक अनुमान भी लगाए हैं.

यदि सुसंगत कार्यविधि और अधिक व्यावहारिक अनुमान लगाए जाएँ तो परमाणु ऊर्जा की प्रक्षेपित क्षमता में परमाणु विभाग के प्रक्षेपणों के मुकाबले लगभग 17 प्रतिशत की गिरावट आ जाएगी. इस अनुमान में यह परिकल्पना भी की गई है कि बुनियादी ढाँचे और निर्माण की समस्याओं के कारण और बिजली की दरों में हुई वृद्धि या दुर्घटनाओं के कारण जो आर्थिक प्रोत्साहनों में कमी आती है उनके कारण भी कोई विलंब नहीं होगा. .

परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा परमाणु ऊर्जा के सीमित मात्रा में उत्पादन के कारण यह ऊर्जा देश में कोयले जैसे परंपरागत स्रोत से उत्पन्न ऊर्जा की तुलना में कहीं अधिक महँगी पड़ती है. पिछले कुछ दशकों में परमाणु ऊर्जा विभाग ने कोयले द्वारा संचालित विद्युत तापगृहों से उत्पन्न बिजली की दरों की प्रतियोगिता में परमाणु ऊर्जा से उत्पन्न बिजली की दरों को लेकर अनेक दावे किए हैं. जबकि कोयले से उत्पन्न बिजली की लागत में कोयला खानों से विद्युत ताप गृहों तक कोयले की ढुलाई का अतिरिक्त खर्च भी शामिल होता है. 1950 के दशक में यह दूरी लगभग छह सौ कि.मी. थी, जो 1999 में बढ़कर 1,200 कि.मी. हो गई, लेकिन जब आकार और समयावधि की दृष्टि से समान कैगा ऐटोमिक पावर स्टेशन और कोयले से संचालित रायचूर थर्मल पावर स्टेशन (RTPS) VII द्वारा उत्पन्न बिजली की लागत की तुलना की गई तो पाया गया कि कैगा स्टेशन केवल कम डिस्काउंट की दृष्टि से ही अधिक प्रतियोगी था जबकि रायचूर स्टेशन पर कोयले की ढुलाई के लिए परिवहन की दूरी 1,400 कि.मी. थी. बिजली के उत्पादन की माँग के साथ-साथ बुनियादी ढाँचागत परियोजनाओं के लिए पूँजीगत बहुविध माँग के कारण डिस्काउंट की कम दरें व्यावहारिक नहीं हैं. परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा परंपरागत रूप में निर्मित भारी रिएक्टरों से उत्पन्न बिजली की तुलना में भी अपने कार्यपरिणामों को देखते हुए ब्रीडर रिएक्टर 80 प्रतिशत या उससे भी अधिक खर्चीले निकले.

पश्चिम से आयातित लाइट वाटर रिएक्टर की तरफ़ रुख करने से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई है, क्योंकि इनके निर्माण की लागत परमाणु ऊर्जा विभाग के हैवी वाटर रिएक्टरों से भी अधिक पड़ती है. इससे परमाणु बिजली की दरें प्रतियोगी नहीं रह पाएँगी. यदि परमाणु ऊर्जा विभाग भारत में मज़दूरी की कम दरों का लाभ उठाते हुए रिएक्टरों के कल-पुर्जों को स्थानीय रूप में ही बनाने पर ज़ोर देता है तो अतीत के समान इस बार भी अनेक निर्माण परियोजनाएँ धीमी गति से आगे बढ़ने लगेंगी.

परमाणु ऊर्जा के विस्तार में निचले स्तर पर की जाने वाली राजनीति भी एक और बाधक तत्व है. 1980 के दशक के बाद से प्रत्येक नए परमाणु रिएक्टर और यूरेनियम का जबर्दस्त विरोध किया जाता रहा है. सबसे अधिक और लगातार विरोध तब होता है जब परमाणु सुविधाओं का

पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर सार्वजनिक बहस होती है, क्योंकि पर्यावरण के मामले में स्वीकृति लेना अनिवार्य कदम होता है. यद्यपि सुरक्षा और रेडियोऐक्टिव कचरे को लेकर स्थानीय लोगों में चिंता तो रहती है फिर भी पश्चिम की तरह यहाँ पर ये मामले इतने हावी नहीं होते. इसके बजाय यहाँ पर परमाणु सुविधाओं से जुड़े वे मामले हावी रहते हैं जिनका स्थानीय लोगों के जीवन और आजीविका पर सीधा प्रभाव पड़ता है उदाहरण के लिए रिएक्टर के ही मामले को ले सकते हैं. इसके लिए कूलिंग वाटर और ज़मीन की ज़रूरत पड़ती है और इसकी किसानों को भी ज़रूरत पड़ती है. हॉट वाटर एवं रेडियोऐक्टिव ऐफ़्लुएंट्स को समुद्र में बहाने से मछली पर आश्रित कामगारों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है. पनबिजली के बाँधों, विद्युत तापगृहों और मोटर-गाड़ी के कलपुर्जों के कारखानों के मामले में भी इसी प्रकार के विरोध का सामना करना पड़ता है. ज़मीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के मामले में जबर्दस्त होड़ के कारण इस दशक में यह विरोध और भी जबर्दस्त होगा.

परंतु ऊँचे और संभ्रांत स्तर के लोग स्थानीय लोगों के इस विरोध की अनदेखी कर देते हैं. सार्वजनिक बहस के दौरान इस प्रकार के लगातार विरोध के बावजूद भी हर एक परमाणु परियोजना को पर्यावरण स्वीकृति मिल जाती है. सामान्य रूप में परमाणु ऊर्जा विभाग एक सशक्त संगठन है और परमाणु ऊर्जा के प्रति राजनीतिज्ञों और आर्थिक रूप से संभ्रांत लोगों का विशेष आकर्षण रहा है. इसका अर्थ यह है कि भले ही परमाणु ऊर्जा के उत्पादन में विफलता मिलती रहे, इसे संरक्षण तो मिलता ही रहेगा. इससे यह स्पष्ट है कि भले ही अगले कई दशकों तक भारत की ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं में परमाणु ऊर्जा का प्रतिशत बहुत कम रहे, लेकिन उस पर नीतिगत चर्चा होती रहेगी और बजट में उसके लिए भारी आबंटन भी होता रहेगा. यह विडंबना ही है, क्योंकि राजनैतिक इच्छाशक्ति और वित्तीय साधनों की कमी के कारण अक्षय ऊर्जा के अनेक वैकल्पिक समाधानों की उपेक्षा हो रही है.

एम.वी.रमन प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के सार्वजनिक और अंतर्राष्ट्रीय मामलों के वुड्रो विल्सन स्कूल में विज्ञान और वैश्विक सुरक्षा कार्यक्रम में एसोसिएट अनुसंधान स्कॉलर हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@gmail.com>